E-Learning material prepared by Dr. Dhananjay Vasudeo Dwivedi, Assistant Professor, Department of Sanskrit, Dr. Shyama Prasad Mukherjee University, Ranchi

नागानन्द

डा० धनञ्जय वासुदेव द्विवेदी

सहायक प्रोफेसर, संस्कृत विभाग,

डा० श्यामा प्रसाद मुखर्जी विश्वविद्यालय, राँची

हर्षवर्धनकृत नागानन्द पाँच अंकों का नाटक है। इसमें मुख्यतः विद्याधर-राजकुमार जीमूतवाहन के द्वारा अपनी बलि देकर शंखचूड नामक सर्प की रक्षा गरुड से करने का वर्णन है। यह बौद्ध धर्म की एक कथा पर आश्रित है जो बृहत्कथा में संकलित थी, इसका एक रूप 'वेतालपञ्चविंशति' में मिलता है। हर्ष ने मूलकथा में पर्याप्त परिवर्तन करके इसे पौराणिक परिवेश दिया है। इसका नायक बौद्ध होने पर भी पौराणिक देवताओं के प्रति भक्ति रखता है। इस प्रकार हर्ष ने बौद्ध और पौराणिक धर्मों के समन्वय के लिए इसे रचा था।

नागानन्द-नाटक की संक्षिप्त कथा

वृद्ध विद्याधर राजा जीमूतकेतु अपने युवा पुत्र जीमूतवाहन के सशक्त कन्धे पर राज्यभार सौंप कर वन में जाना चाहते हैं। किन्तु, जीमूतवाहन को पितृचरण सेवा में जो आनन्द आता है, वह राज्यपालन में नहीं। वह पिता की सेवा हेतु अपने मित्र आत्रेय विदूषक को साथ लेकर पिता के साथ राज्य छोड़कर जंगल के लिए प्रस्थान करता है। पिता के निवास हेतु उपयुक्त स्थान की खोज में वह मलयाचल पर्वत पर पहुँच जाता है। वहाँ अचानक ही गौरी मन्दिर में देवी की उपासना में निरत सिद्धराज की अनिन्द्य सुन्दरी पुत्री मलयवती से उसकी भेंट हो जाती है। प्रथम दर्शन में ही जीमूतवाहन उसकी ओर आकृष्ट हो जाता है। वहीं उसे यह भी पता चलता है कि भगवती गौरी ने स्वप्न में उससे कहा है कि उसका पति विद्याधर सम्राट् होगा।

उधर प्रिय-वियोग में तड़पती मलयवती उपवन में सन्तापनोदन कर रही थी कि इसी बीच अपने मित्र विदूषक के साथ नायक भी वहीं पहुँच जाता है। ठीक इसी समय सिद्धराज पुत्र मित्रावसु ने वहाँ उपस्थित होकर अपनी बहन की शादी का प्रस्ताव नायक के सामने उपस्थित कर दिया। किन्तु,

नायक ने इसलिए उसे अस्वीकार कर दिया कि वह किसी अन्य सुन्दरी को प्यार करता है। जीमूतवाहन को यह पता नहीं था कि जिस सुन्दर कन्या को उसने गौरी मन्दिर में देखा था, वही सुन्दरी विश्वावसु की बहन है। छिपकर मलयवती भी इन दोनों की बातें सुन लेती है। इसकी प्रतिक्रिया उसके मन पर गंभीर होती है और वह गले में फँसरी लगाकर आत्महत्या करना चाहती है, पर ठीक समय पर नायक वहाँ पहुँचकर उसे बचा लेता है। उसे उसका चित्र दिखलाकर अपने प्रणय का विश्वास दिलाता है। फिर जीमूतवाहन के पिता मलयवती के साथ अपने पुत्र के विवाह की अनुमति दे देता है। दोनों के विवाह हो जाने पर खूब आमोद-प्रमोद मनाया जाता है, एक विशाल पानोत्सव का भी आयोजन किया गया, जिसमें सभी विद्याधर एवं सिद्धों ने भाग लिया।

इसके बाद ही नाटक ने नया मोड़ लिया है। मित्रावसु ने आकर नायक को यह सूचना दी कि उसके शत्रु मातंग ने उसके राज्य पर चढ़ाई कर दी है। अतः सिद्धसेना के साथ वह उसका समूल नष्ट करने की अनुमति चाहता था। किन्तु उसके हृदय से तो शत्रु-मित्र के भाव ही मिट चुके थे। वह तो सर्वकल्याणकामी था। फिर हिंसा की अनुमति ही कैसे देता। अपने साले मित्रावसु को समझा-बुझाकर उसी के साथ समुद्र का ज्वार-भाटा देखने को चल देता है। समुद्रतट पर वह शंखचूड़ नामक नाग की माता को रोते देखता है। पूछने पर उसे पता चला कि गरुड़ के भोजनार्थ एक नाग प्रतिदिन भेजा जाता है। आज उसके इकलौते बेटे की बारी है। जीमूतवाहन उस शंखचूड़ को बचाने के लिए अपना बलिदान देने को प्रस्तुत हो जाता है। शंखचूड़ की जगह रक्तवस्त्र पहनकर वध्यशिला पर वह स्वयं जाकर बैठ गया। निर्दिष्ट समय पर गरुड़ वहाँ पहुँचकर जीमूतवाहन को अपनी चोंच में लेकर मलयपर्वत की चोटी पर चला गया।

इधर जीमूतवाहन को लौटा हुआ न पाकर जीमूतकेतु तथा विश्वावसु दोनों ही चिन्तित हो उठे। इसी बीच मांस से लथपथ जीमूतवाहन की चूड़ामणि पृथ्वी पर आकर जीमूतकेतु के पैरों के पास गिरती है। संदिग्ध स्थिति में ये चिन्तातुर थे ही कि सामने से शंखचूड़ आते दिखाई दिया। उससे सारी बातें जानकर ये लोग उसी के साथ मलय पर्वत पर पहुँच गये। वहाँ शंखचूड़ नाग ने गरुड़ की भ्रान्ति का निराकरण करते हुए अपना और जीमूतवाहन का परिचय दिया। एक परोपकारी को इतना कष्ट

देने के लिए गरुड़ को पश्चात्ताप होने लगा। उस समय तक जीमूतवाहन में प्राण शेष थे। उन्होंने माता-पिता को प्रणाम कर गरुड़ को अहिंसा का उपदेश देकर सदा के लिए अपनी आँखें बन्द कर ली। गरुड़ अहिंसा व्रत ग्रहण कर मृत जीमूतवाहन एवं सर्पों को जीवित करने लिए स्वर्ग से अमृतवृष्टि करवाने चले जाते हैं। अपने पुत्र को मरा हुआ देखकर इधर जीमूतकेतु शंखचूड़ सहित सपरिवार उसी चिता में आत्मदाह करना चाहता है। इतने में भगवती गौरी प्रकट होकर जीमूतवाहन को फिर से जिलाकर उसे विद्याधर चक्रवर्ती होने का वरदान देती है। इसी क्षण गरुड़ के प्रयास से आकाश अमृतवृष्टि करता है। मरे हुए सारे नाग पुनर्जीवित होकर नागलोक को चले जाते हैं।

नागानन्द-नाटक की विशिष्टता

संस्कृत के अन्य सभी प्रचलित नाटकों की अपेक्षा नागानन्द का वैशिष्ट्य कुछ विलक्षण है। यद्यपि नाटक के मंगलाचरण में भगवान् बुद्ध की वन्दना है, विद्याधर जातकगत कथा का निबंधन किया गया है, पर सम्पूर्ण नाटक पर बौद्ध प्रभाव परिलक्षित नहीं होता है। गौरी को नाटकीय गति में महत्त्वपूर्ण स्थान देने से नाटक पर पौराणिक ब्राह्मण प्रवृत्ति का पर्याप्त प्रभाव ही परिलक्षित हुआ है। परोपकारार्थ अपने जीवन की आहुति देनेवाले नायक को पुनर्जीवित दिखलाकर नाटककार ने वैदिक और बौद्ध दोनों धर्मों का प्रशस्त समन्वय, जो उस युग की विशेषता थी, उसे इस नाटक मे गुम्फित कर इसे अत्यन्त महत्त्वपूर्ण बनाया और एक सम्मानित विशिष्टता भी दी है।

इस नाटक की कतिपय अन्य विशिष्टताएँ भी इसे महत्त्वपूर्ण बना देती है। संस्कृत नाटकों में जहाँ शृंगार रस को अधिक महत्त्व दिया गया है, वहाँ इस नाटक में शृंगार को गौण मानकर दया-वीररस की प्रधानता दिखलाई गई है। यद्यपि संस्कृत के नाटकों में दया-वीररस प्रधान नाटक नगण्य है, फिर भी उस परिस्थिति में बहुजनहिताय परोपकार व्रत की कथा से सम्बद्ध इस नाटक की अपनी विशेषता है, अपना सौन्दर्य है। जहाँ जनसामान्य की प्रवृत्तियाँ स्वार्थमूलक है, वहाँ इस नाटक में महाकवि हर्ष ने 'सर्वलोकहिताय' परम कल्याण के लिए निःश्रेयस् फल को देनेवाले और परहित सम्पादक पवित्र एवं प्रातःस्मरणीय चरित्र का चित्रण कर इस नाटक को अनमोल बना दिया है। मलयवती की प्रणयकथा तो नागानन्द का एक आनुषंगिक व्यापार मात्र है। इसका मुख्य व्यापार दया-वीरत्व की

अभिव्यक्ति है। नाटककार ने प्रथम तीन अंकों के व्यापार को बड़े सूक्ष्म ढंग से जोड़कर इसे महत्त्वपूर्ण बनाया है। अगर इसे तीसरे अङ्क में ही समाप्त कर दिया जाता तो भी रत्नावली या प्रियदर्शिका की तरह प्रणयरूपक बन जाता।

कुछ आलोचकों की दृष्टि में नाटक के ये दोनों व्यापार परस्पर सम्बद्ध नहीं दिखलाई पड़ते और नाटक व्यापारान्विति (Unity of action) के अभाव में शिथिल हो गया है। पर नाटक के दो-दो व्यापार ही वस्तुतः इनकी विशिष्टता या सौन्दर्य है। वस्तुतः नागानन्द की कथा, जिसे असम्बद्ध कहा गया है, वस्तुतः यही इस नाटक के स्थापत्य की विशेषता है, जिसके कारण उसमें एक विशिष्ट गरिमा आ गई है। नदी के दो तट असम्बद्ध दीखते हैं, पर वे वस्तुतः असम्बद्ध नहीं रहते-उन्हीं के बीच से जलधारा बहती है। इसी तरह 'नागानन्द' की असम्बद्ध-सी दीख पड़ने वाली दोनों कथाओं के बीच से भारतीय जीवनदर्शन के राग-विरागात्मक समन्वित जीवन-जलधारा युगों से निरन्तर बहती चली आ रही है, बहुत पहले प्रियदर्शिका में, फिर रत्नावली में श्रीहर्ष ने इस प्रक्रिया को पकड़ने की कोशिश की थी किन्तु तब वे पात्रों के विलक्षण व्यक्तित्व के चित्रण और स्थापत्य के कृत्रिम बन्धन के अतिक्रमण की सामर्थ्य अपने में विकसित नहीं कर सके थे। नागानन्द में अपने प्रौढि प्रकर्ष के कारण श्रीहर्ष ने रूढि कुछ रीतियों का व्यतिक्रम किया और इसमें हमें आश्चर्य नहीं करना चाहिए, यदि संस्कृत के कुछ रूढ़िवादी विद्वान् इसे उनकी असफलता मान बैठे। नागानन्द केवल संस्कृत भाषा के ही नहीं, स्वयं श्रीहर्ष की भी एक अकेली नाटकीय कृति है, जिसके राग-विराग, उच्चावच, विराट् विस्तार, निर्मम निःस्वार्थ, तटस्थ परोपकार, त्याग और पितृभक्ति पराकाष्ठा तक पहुँचकर अत्यन्त विशिष्ट बन गई शैली किसी भी संस्कृत नाटक इस तरह पच खपकर एक साथ परिलक्षित नहीं होती।

नागानन्द का रस विधान

नागानन्द वीररस प्रधान नाटक है। वीररस का स्थायी भाव 'उत्साह' है । जिन कर्मों में किसी प्रकार के कष्ट या हानि सहने का साहस अपेक्षित होता है, उन सबके प्रति उत्कण्ठापूर्ण आनन्द उत्साह के अन्तर्गत आता है। नागानन्द का अङ्गीरस वीर है तथा अन्य रस अङ्ग बनकर आये हैं।

नागानन्द हर्ष की अन्तिम रचना मानी जाती है। इसमें अहिंसा, आत्म-बलिदान, दान, दया परोपकार और हिंसा का अत्यन्त प्रभावोत्पादक ढंग से महत्त्व वर्णित है। यद्यपि नाटकीय दृष्टि से यह नाटक रत्नावली से उत्कृष्ट नहीं है, तथापि भाव-सौन्दर्य भाषा-विशदता, सरलता, सरसता आदि गुणों की दृष्टि से यह नाटक महत्त्वपूर्ण है। हर्ष के अन्य दो नाटकों में शृङ्गाररस प्रधान है, किन्तु इसमें करुण रस की प्रधानता है।